International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 22-10-2025, Accepted: 21-11-2025, Published: 06-12-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 117-120

जीवन यथार्थ का दस्तावेजः जूठन

डॉ० नरेश कुमार
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

सारांश
मनुष्य के व्यक्तित्व निर्माण में उसके सामाजिक परिवेश का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भारतीय समाज प्राचीनकाल से ही वर्ण और जात–पात व्यवस्था पर आधारित रहा है। भारतीय समाज में सदा से दलित वर्ग के साथ अमानुषिक और भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखित जूठन आत्मकथा दलित लोगों के जीवन का यथार्थ दस्तोवज़ है। लेखक ने दिखाया है कि आज समाज, शिक्षा, राजनीति, साहित्य, संस्कृति और धार्मिक हर क्षेत्र में दलितों के साथ अन्याय और अत्याचार हो रहा है। जूठन के माध्यम से लेखक स्पष्ट करना चाहता है कि वास्तव में व्यक्ति की पहचान उसके गुणों के आधार पर होनी चाहिए न कि उसकी जाति के आधार पर। जूठन आत्मकथा व्यक्ति को जीवन में संघर्षरत रहते हुए संगठित और शिक्षित होने का संदेश देती है।

मूल शब्दः दलित जीवन, जीवन यथार्थ, दस्तावेज़, अमानवीयता, जिल्लत, संघर्षरत, अमानुषिक

दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून, सन् 1950 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जनपद से जुड़े बरला नामक गांव में हुआ। यह एक दलित परिवार था, जो कि अत्यंत निचले और निम्न पायदान पर था। इनका बचपन काफी सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों में बीता। माता–पिता के स्नेह के अतिरिक्त सम्पूर्ण जीवन कष्टप्रद और संघर्षमयी रहा। बचपन से ही लेखक ने दलित जीवन की पीड़ा को झेला। प्रारम्भिक शिक्षा बरला से विकट परिस्थितियों में प्राप्त करते हुए शिक्षा के क्रम को निरन्तर जिल्लत, शोषण तथा अर्थाभाव सहन करते हुए जारी रखा। इन्होंने तकनीकी शिक्षा जबलपुर, मुम्बई से ग्रहण की तथा विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए एम०ए० हिन्दी की परीक्षा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर से उत्तीर्ण की।

ओमप्रकाश वाल्मीकि बचपन से ही अध्ययनशील और चिंतक व्यक्ति रहे। साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का सृजन किया। सन् 1997 में प्रकाशित 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से ये विशेष रूप से चर्चा में आए। 'जूठन' आत्मकथा के माध्यम से लेखक ने दलित जीवन के यथार्थ को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। वास्तव में 'जूठन' आत्मकथा में इन्होंने भंगी होने के कारण जिस जिल्लत, भूख, जुल्म और नरक की जिन्दगी को झेला, उससे मनुष्य और समाज का साक्षात्कार करवाया है। 'जूठन' आत्मकथा के सन्दर्भ में 'डॉ० ललिता कौशल' का कहना है कि, '''जूठन' शीर्षक में वाल्मीकि की जाति–बिरादरी की पीड़ा, अपमान और गरीबी समाई हुई है। यह दिल दहला देने वाली एक लेखक की सच्ची कहानी है। यह आत्मकथा ब्राह्मणवादी वर्ण–धर्म व उसके संस्थागत रूप के पाखंडों में मौजूद अमानवीयता को उद्घाटित करती है। स्वयं लेखक 'जूठन' को अपने जीवन के अनुभवों, उतार–चढ़ाव और संघर्षों की कथा कहता है।''[1] वास्तव में 'जूठन' में लेखक के जीवन की सच्चाई और ढोया हुआ दर्द है। लेखक ने बचपन से लेकर देहरादून आर्डिनेंस फैक्ट्री में अधिकारी बनने तक जिस दुःख और पीड़ा को भोगा 'जूठन' आत्मकथा में वो तमाम सच्चाई छिपी हुई है। 17 नवम्बर, 2013 को वाल्मीकि जी की मृत्यु हो गई परन्तु दलित समाज और साहित्य को आन्दोलन का रूप देने में उनका योगदान हमेशा अविस्मरणीय रहेगा। 'जूठन' वास्तव में किसी एक वाल्मीकि के जीवन का यर्थाथ नहीं है, बल्कि ऐसे अनेक वाल्मीकि दलित होने का दंश आज भी झेल रहे हैं। प्रस्तुत आत्मकथा के माध्यम से लेखक ने समाज में दलितों के ऊपर हो रहे जुल्मों और अत्याचारों की वास्तविक तस्वीर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। समाज, शिक्षा, राजनीति, साहित्य तथा संस्कृति के क्षेत्र में ओमप्रकाश के साथ किस प्रकार अन्याय और अत्याचार हुआ उसी का वास्तविक दस्तावेज जूठन में समाया हुआ है।

मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में उसके सामाजिक परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारतीय समाज सदा से वर्ण और जात–पात की व्यवस्था पर आधारित रहा है। भारतीय समाज में दलितों के साथ सदा से ही अमानुषिक व्यवहार होता रहा है। लेखक के जीवन की यात्रा ऐसे ग्रामीण परिवेश और वातावरण से शुरू होती है, जिसमें शायद कभी कोई जन्म नहीं लेना चाहेगा। लेखक के शब्दों में, ''जोहड़ी के किनारे पर चूहड़ों के मकान थे, जिनके पीछे गांव भर की औरतें, जवान लड़कियां, बड़ी–बूढ़ी यहां तक कि नई नवेली दुल्हनें भी इसी डब्बोवाली के किनारे खुले में टट्टी–फरागत के लिए बैठ जाती थीं। ..... तमाम शर्म–लिहाज छोड़कर वे डब्बोवाली के किनारे गोपनीय जिस्म उघाड़कर बैठ जाती थीं। ..... चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में साँस घुट जाए। तंग गलियों में घूमते सुअर, नंग–धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। ..... उसी बगड़ में हमारा परिवार रहात था। .... घर में सभी कोई न कोई काम करते थे। फिर भी दो जून की रोटी ठीक ढंग से नहीं चल पाती थी। .... नाम लेकर पुकारने की किसी को आदत नहीं थी। उम्र में बड़ा हो तो 'ओ चूहड़े, बराबर या उम्र में छोटा है तो 'अबे चूहडे के' यही तरीका या सम्बोधन था। बराबर या उम्र में छोटा है तो 'अबे चूहडे के' यही तरीका या सम्बोधन था। अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय–भैंस को छुना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इनसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। ..... इस्तेमाल करो, दूर फेंको।''[2] इस प्रकार कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता और वर्ण व्यवस्था के बदबूदार परिवेश में लेखक का बचपन व्यतीत हुआ।

दलित समुदाय पर ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक जुल्म और अत्याचार किये जाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि को बचपन से ही जातिगत विषमता के कारण तिरस्कार और अत्याचारों का सामना करना पड़ा। बरला गांव में मुसलमान त्यागी भी काफी अधिक थे। उनका व्यवहार दलितों के प्रति अत्यंत घृणित था। वे उनके ऊपर तरह–तरह की फब्तियां किया करते थे। लेखक के स्वयं के शब्दों में, ''ऐसी फब्तियाँ जो बुझे तीर की तरह भीतर तक उतर जाती

थी। ऐसा हमेशा होता था। साफ–सुथरे कपड़े पहनकर कक्षा में जाओ तो साथ के लड़के कहते, 'अबे, चूहड़े का, नए कपड़े पहनकर आया है।' मैले–पुराने–पुराने कपड़े पहनकर स्कूल जाओ तो कहते, 'अबे चूहड़े के, दूर हट, बदबू आ रही है।''[3] इससे स्पष्ट होता है जाति का छोटापन लेखक को पल पल छलता रहा। लेखक और उसके समुदाय के लोग इसी प्रकार अनेक बार त्यागियों और उच्च जाति के लोगों के तिरस्कार का शिकार हुए। मास्टर बृजपाल त्यागी के घर में घटी घटना सवर्णों के उच्च संस्कारों की पोल खोल कर रख देती है। ओम प्रकाश अपने सहपाठी के साथ मास्टर बृजपाल के गांव गेहूँ लेने जाता है। दोनों का खूब आदर सत्कार किया जाता है। इसी दौरान वहां पर एक अन्य व्यक्ति आ जाता है। उस व्यक्ति ने बुजुर्ग व्यक्ति से दोनों के विषय में पूछताछ शुरू कर दी। बरला से आए हैं। सुनते ही सवाल पूछा कोण जात से है। इस पर ओम प्रकाश ने जवाब देते हुए कहा, ''चूहड़ा जात हैं। ..... बुजुर्ग ने चारपाई के नीचे पड़ी लाठी उठाकर तड़ से मार दी, भिक्खूराम की पीठ पर। ..... बुर्जुग के मुंह से अश्लील गालियों की बौछार होने लगी थी। .... कई लोगों की राय थी रस्सी से बांधकर दोनों को पेड़ से लटका दो।''[4] इस प्रकार पता चलता है कि सवर्ण समाज निम्न जाति के लोगों के साथ कैसा अमानवीय व्यवहार करता है।

दलितों से हर जगह अमानवीय और यातनामयी व्यवहार होता है। उच्च जाति के लोग दलितों से बेगार करवाने के बावजूद भी उचित व्यवहार नहीं करते। दलित बेचारे तो सवर्ण लोगों की जूठन तक को भी तरसते हैं। सुरवदेव सिंह त्यागी की बेटी के विवाह में वाल्मीकि की माँ जब काम करने के बाद खाना मांगती है, तो सुखदेव झूठी पतलों के टोकरे की ओर इशारा करते हुए कहता है, ''टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है– ऊपर से जाकतों (बच्चों) के लिए खाना मांग रही है। अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।''[5] अतः दलितों ने अत्यंत क्रूर मानवीय व्यवहार को जीवन में झेला। वाल्मीकि से हर आदमी हर स्तर पर सिर्फ एक ही प्रश्न पूछता है, ''तू कुण जात का है।'' अबे चूहड़े के दूर हट बदबू आ रही है।''[6] इस प्रकार देखा जा सकता है कि छोटी जात के कारण कदम–कदम पर वाल्मीकि और उसके जैसे अन्य लोगों को जलील किया जाता है।

जाति का लेबल बड़ा ही भयानक होता है, जो मृत्यु पर्यन्त भी शायद उसका पीछा नहीं छोड़ता। जैसे ही ओमप्रकाश आर्डिनेंस फैक्ट्री देहरादून में प्रवेश पाता है तो पिताजी बहुत खुश होकर यही कहते थे चलो 'जात से तो पीछा छूटा' लेकिन वे शायद इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि जाति का ठप्पा तांउम्र पीछा नहीं छोड़ेगा। मुम्बई (अम्बरनाथ) के हॉस्टल में रहते समय ओमप्रकाश वाल्मीकि का कुलकर्णी परिवार से सम्पर्क हुआ। वाल्मीकि नाम के भ्रम के कारण कुलकर्णी की बेटी सविता वाल्मीकि से प्रेम करने लगी। जब वाल्मीकि ने सविता से अपनी जात के विषय में कहा, ''अच्छा यदि मैं एस०सी० हूँ ..... तो भी .....' तुम एस०सी० कैसे हो सकते हो? उसने इठलाकर कहा। क्यों यदि हुआ तो? ..... 'तुम तो ब्राह्मण हो।' ..... यह तुमसे किसने कहा? ..... 'बाबा ने', गलत कहा। मैं एस०सी० हूँ .....' सविता गम्भीर हो गई थी।' उसकी आँखे छलछता आई। उसने रूआँसी होकर कहा, 'झूठ बोल रहे हो न'? ..... 'नहीं सवि यह सच है ..... जो तुम्हें जान लेना चाहिए।' ..... वह चलते–चलते रूक गई थी। बोली 'घर आओ या न आओ लेकिन यदि यह सच है तो बाबा से मत कहना....।' ..... नहीं कहोगे वादा करो ....।''[7] ये आधुनिक युग के ब्राह्मण परिवारों की सोच है, जिसका शिकार ओमप्रकाश जैसे दलित जाति के लोग होते हैं।

वर्ण व्यवस्था की क्रूरता इतनी भयानक होती है कि मानव का मानव के प्रति व्यवहार तक बदल जाता है। बदलते व्यवहार की इसी यातना को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने महाराष्ट्र में झेला। ओमप्रकाश की कुरेशी नामक व्यक्ति से मित्रता थी, जो कि महाराष्ट्र पुलिस में सब–इंस्पेक्टर थे। एक दिन कुरेशी ने ओमप्रकाश को अपने कमांडेंट साहब से मिलाने की बात कही और साथ में यह भी कहा कि कमांडेंट साहब तुम्हारे ही जिले से हैं। ओमप्रकाश कमांडेंट साबह से मिलने चले गए। स्वयं वाल्मीकि के शब्दों में ''कमांडेंट साहब गर्मजोशी से मिले थे। यह सुनकर खुश हुए कि मैं बरला का रहने वाला हूँ। अभी ठीक से बैठे भी नहीं थे कि उन्होंने कहना शुरू किया, 'बरला तो त्यागियों का गाँव है। आप किस जाति से हैं?' ..... मैंने जैसे ही अपनी जाति 'चूहड़ा' बताई, वे असहज हो गए थे। साथ ही बातचीत का सिलसिला भी थम गया। जैसे बात करने लायक कुछ बचा ही नहीं था।''[8] इससे स्पष्ट होता है कि जातिगत विषमता के कारण मनुष्य का व्यवहार एक दम से परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार की वर्ण व्यवस्था की पीड़ा वाल्मीकि द्वारा सन् 1980 में जयपुर से चन्द्रपुर लौटते हुए ट्रेन में झेली गई। ट्रेन में एक मंत्रालय के अधिकारी के परिवार से आत्मिक परिचय हो जाता है और बात सीधी जाति पर आ जाती है। जैसे ही वाल्मीकि द्वारा अपनी जाति भंगी बताई जाती है उसके बाद के माहौल के सन्दर्भ में स्वयं लेखक बताता है कि, ''सारा माहौल बिगड़ गया था। जैसे अचानक स्वादिष्ट व्यंजन में मक्खी गिर गई। .... माहौल बोझिल हो गया था। बहुत तकलीफ देह हो गई थी यात्रा।''[9] इस प्रकार देखा जा सकता है कि जाति और वर्ण व्यवस्था मानवीय सम्बन्धों को छिन्न–भिन्न कर देती है।

शिक्षा मानव जीवन का अभिन्न अंग है। शिक्षा के माध्यम से ही मनुष्य विकास करते हुए जीवन में उपलब्धियों को प्राप्त करता है। लेकिन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के माध्यम से दलित ओर अछूत जातियों के समाज को शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति से पूरी तरह दूर रखा गया। 'जूठन' आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने शिक्षा तन्त्र की नग्नता को उकेरते हुए इस पाखण्ड और यथार्थ का पर्दाफाश किया है। जूठन कृति में लेखक ने सवर्ण समाज और शिक्षकों की घटिया मानसिकता पर प्रकाश डाला है।

अनेक समाज प्रतिष्ठित लोगों के सामने हाथ–पांव जोड़ने के पश्चात वाल्मीकि का विद्यालय में प्रवेश होता है, परन्तु दलित समाज में जन्म लेने के कारण अभद्र व्यवहार निरन्तर वाल्मीकि की आत्मा को कटोचता रहता है। वाल्मीकि के शब्दों में, ''स्कूल में दूसरों से दूर बैठना पड़ता था, वह भी जमीन पर। ..... त्यागियों के बच्चे 'चूहड़े का' कहकर चिढ़ाते थे। कभी–कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब सी यातनापूर्ण जिन्दगी थी।.... स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपंप छूने पर बवेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। मास्टर लोग भी हैंडपंप छूने पर सजा देते थे।''[10] स्कूल में प्रवेश पाने के पश्चात कितनी घृणा और पीड़ा का सामना दलितों को करना पड़ता था।

शिक्षकों का व्यवहार दलित छात्रों के प्रति सदैव अपने व्यवसाय और पेशे के अनुकूल रहता है। वाल्मीकि ने विद्यालय में शिक्षकों के विपरीत व्यवहार को अनेक कष्ट सहन कर झेला। वाल्मीकि के स्वयं के शब्दों में ''अध्यापकों का आदर्श रूप जो मैंने देखा वह अभी तक मेरी स्मृति से मिटा नहीं है। जब भी कोई आदर्श गुरु की बात करता है तो मुझे वे तमाम शिक्षक याद आ जाते हैं जो माँ–बहन की गालियाँ देते थे। सुंदर लड़कों के गाल सहलाते थे और उन्हें अपने घर बुलाकर उनसे बाहियातपन करते थे।''[11] इस प्रकार अध्यापकों द्वारा दी जाने वाली यातनाऐं दलित विद्यार्थियों को सहन करनी पड़ती हैं। शिक्षकों की ब्राह्मणवादी और सवर्ण मानसिकता के कारण दलितों के साथ शैक्षणिक संस्थानों में हेय और निदंनीय कार्य करवाये जाते हैं। ओमप्रकाश ने जब स्कूल में दाखिला लिया तो हेड मास्टर कलीराम का व्यवहार बड़ा ही घटिया था। उन्होंने ओमप्रकाश को अपने कमरे में बुलाया और पूछा, ''क्या नाम है बे तेरा, 'ओम्प्रकाश' .....

'चूहड़े' का है? 'जी', ...ठीक है ..... वह सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़के झाड़ू बणा ले। पत्तों वाली झाड़ू बणाना। और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसे सीसा। तेरा तो यो खानदानी काम है। जा ..... फटाफट लग जा काम पे।''[12] इस प्रकार अनेक दिनों तक वाल्मीकि का शोषण किया जाता है परन्तु बावजूद इसके उसने शोषण को सहन करते और उसका विरोध करते हुए अपनी शिक्षा का क्रम जारी रखा।

शिक्षा के मन्दिरों में दलितों के साथ पढ़ाई के नाम पर पक्षपात और भेदभाव किया जाता रहा है। ओम प्रकाश के साथ भी ऐसा ही हुआ। जानबूझकर उसका प्रैक्टिकल तक नहीं करवाया जाता और मौखिक साक्षात्कार में भी उसे कम अंक लगाए जाते हैं, जिस कारण वह बारहवीं की कक्षा में फेल तक हो जाता है। लेखक के शब्दों में, ''कई महीने तक जब मैं प्रैक्टिकल नहीं कर पाया तो मुझे ऐसा महसूस होने लगा था जैसे जान–बूझकर ऐसा किया जा रहा है। एक रोज उसने मुझे सभी के सामने अपमानित भी किया था और प्रयोगशाला से बाहर कर दिया था। ..... बारहवीं कक्षा में मैं प्रैक्टिकल नहीं कर पाया था, पूरे वर्ष। ..... साक्षात्कार में भी मुझे कम अंक मिले थे, जबकि मैंने परीक्षक के सभी प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर दिये थे। जब परिणाम घोषित हुआ, मैं बारहवीं में फेल था।''[13] इस प्रकार अध्यापकों द्वारा वाल्मीकि के साथ पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया गया। जब ओमप्रकाश द्वारा देहरादून में दाखिला लिया गया, तो यहां पर भी उसे सवर्ण छात्रों की कुदृष्टि का शिकार होना पड़ा। ओमप्रकाश के शब्दों में, ''एक दिन अंग्रेजी की कक्षा से बाहर निकलते ही दूसरे सेक्शन के एक लड़के ने मुझे रोक लिया। ..... एक ने मेरी पैंट खींचते हुए कहा, किस टेलर से सिलवाई है? हमें भी उसका पता दे दो।''[14] इस प्रकार ओमप्रकाश के साथ अनुचित व्यवहार किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि कानूनी व्यवस्था होने के बावजूद भी दलितों और अछूतों के साथ शैक्षणिक स्तर पर अमानवीय व्यवहार किया गया।

भारतीय समाज में दलितों के साथ आर्थिक शोषण भी सदा से होता रहा है। सवर्ण समाज आर्थिक आधार पर सदैव दलितों और निम्न जाति के लोगों को दबाता और कुचलता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की गरीबी और उनके आर्थिक शोषण की दारूण व्यथा का चित्रण 'जूठन' के माध्यम से किया है। सवर्णों के घरों तथा खेतों में काम करना, उनकी जूठन से पेट भरना, उनके मरे हुए जानवरों को उठाना जैसे घिनौने कार्य करने पर भी उनके शोषण का शिकार होना पड़ता था।

ओमप्रकाश और उसकी बिरादरी के अन्य लोग त्यागियों के यहां काम किया करते थे बदले में उन्हें थोड़ा बहुत अनाज दे दिया जाता था। वे उत्सवों के समय टोकरियों में त्यागियों के घरों से जूठन एकत्रित करके लाते थे। उन्हें उचित मेहनताना नहीं मिल पाता था। ओमप्रकाश के शब्दो में, दिन–रात मर–खपकर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र 'जूठन'।''[15] इससे स्पष्ट है कि दलितों को जूठन तक के लिए भी मोहताज होना पड़ता था। दलित लोग अकसर त्यागियों के घरों और खेतों में काम किया करते थे परन्तु बदले में नाममात्र अनाज ही दिया जाता था, जिससे उन्हें दाने–दाने को तरसना पड़ता था। ओमप्रकाश के शब्दों में, ''इन सब कामों के बदले मिलता था, दो जानवर पीछे फसल के समय पांच सेर अनाज यानी लगभग ढाई किलो अनाज। दस मवेशीवाले घर से साल भर में 25 सेर (लगभग 12–13 किलो), अनाज दोपहर को प्रत्येक घर से एक बची–खुची रोटी, जो खास तौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी। कभी–कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी।''[16] यानि मेहनत करने के पश्चात् सिर्फ शोषण ही दलितों के हिस्से आता रहा।

सवर्ण जाति के लोग जूठन तक को देने के लिए भी दलितों का शोषण करते रहे हैं। सुखदेव सिंह की बेटी के शादी के अवसर पर वाल्मीकि के माता–पिता ने घर–आँगन से लेकर सभी काम किये जब सभी लोग खाना खाकर चले गए तो ओमप्रकाश की माँ ने अपने बच्चों के लिए चौधरी से खाने की फर्याद की इस पर सुखदेव त्यागी आक्रोश से कहता है, ''टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है ..... ऊपर से जाकतों के लिए खाणा माँग री है? अपनी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन।''[17] अतः समाज का सम्पन्न वर्ग सदा से ही दलितों और गरीबों का आर्थिक शोषण करता रहा है।

आर्थिक कष्टों के कारण मनुष्य द्वारा हीन समझे जाने वाले कार्यों को भी दलितों को करना पड़ता है। ओमप्रकाश के जीवन का अनुभव भी कुछ इस तरह का ही रहा। उसे मरे हुए जानवरों को उठाकर उनकी खाल तक उतारने का काम तक करना पड़ता है। उसे ऐसा कार्य करते हुए मानसिक यातना से गुजरना पड़ता है। वाल्मीकि अपनी व्यथा के विषय में बताते हैं, ''मैं जैसे स्वयं ही गहरे दल–दल में फंस रहा था जहां से मैं उबरना चाहता था, हालात मुझे उसी दल–दल में घसीट रहे थे। जिस यातना को मैंने भोगा है, आज भी उसके जख्म मेरे तन पर ताजा हैं।''[18] इससे स्पष्ट है कि वाल्मीकि ने जीवन में कितना आर्थिक संघर्ष किया।

गरीबी स्वयं एक अभिशाप है और इस पर दलित हो तो और ज्यादा मुसीबत। देहरादून में पढ़ाई करते समय वाल्मीकि के लिए सर्दियाँ काटनी मुश्किल हो जाती हैं। एक स्वेटर तक भी वाल्मीकि खरीद नहीं सकता था। वाल्मीकि के शब्दों में, ''देहरादून की पहली सर्दी मेरे लिए बहुत कष्टदायक रही थी। मेरे पास सर्दियों में पहनने के लिए कोई गर्म कपड़ा नहीं था। .... मैंने लकड़ी की टाल से तीस–चालीस रूपए जमा कर लिए थे। एक सफाई कर्मी से वह खाकी जर्सी खरीद ली थी उन रूपयों में से। ..... पहले दिन जब मैं इसे पहन कॉलेज गया तो लड़के जमादार कहकर चिढ़ाने लगे थे।''[19] इस प्रकार वाल्मीकि द्वारा अनेक आर्थिक कष्ट झेले गए।

सांस्कृतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में भी सदा से ही दलितों का शोषण ही होता रहा है। वाल्मीकि ने जीवन में सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्र की इस मानसिक यातना को झेला। वाल्मीकि पढ़ाई में श्रेष्ठ था और एक अच्छा कलाकार भी। परन्तु जातिगत विषमता के कारण हमेशा उसे दूर रखा जाता रहा। स्वयं वाल्मीकि के शब्दों में, ''मुझे सांस्कृतिक कार्यक्रमों, क्रियाकलापों से दूर रखा जाता था। ऐसे वक्त, मैं सिर्फ किनारे खड़ा होकर दर्शक बना रहता था। स्कूल के वार्षिक उत्सव में जब नाटक आदि का पूर्वाभ्यास होता था, मेरी भी इच्छा होती थी कोई भूमिका मुझे भी मिले। लेकिन हमेशा दरवाजे के बाहर खड़ा रहना पड़ता था।''[20] इस प्रकार दलितों को हमेशा से ही सांस्कृतिक कार्यक्रमों और उत्सवों से दूर रखा गया।

आज व्यक्ति की पहचान उसके विचारों से नहीं बल्कि उसके उच्च कुल में जन्म लेने और सर्वसम्पन होने से की जाती है। वाल्मीकि एक अच्छे साहित्यकार और वक्ता के रूप में प्रसिद्ध हो रहे थे। एक दिन उनको एक कार्यक्रम में 'बौद्ध साहित्य एवं दर्शन' विषय पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाता है। जैसे ही बोलने के लिए वाल्मीकि को माइक दिया जाता है, एक श्रोता बीच में ही बोल पड़ता है, ''वाल्मीकि बौद्ध दर्शन और साहित्य पर बोलेगा। शर्म नहीं आती।''[21] इससे स्पष्ट होता है कि जातिगत विषमता के कारण व्यक्ति के उच्च विचारों का मूल्य समाप्त हो जाता है। दलित होने के कारण साहित्यकार भी जातिगत भेदभाव के चलते वाल्मीकि की रचनाओं को छापने की अपेक्षा वर्षों दबाकर रखते थे। लेखक द्वारा 'जंगल की रानी' नामक कहानी सारिका पत्रिका में प्रकाशन हेतु भेजी जाती है। परन्तु 10 वर्षों तक कहानी नहीं छप पाई। वाल्मीकि के शब्दों में,

''1990 में कहानी की वे दोनों प्रतियाँ एक टंकित पत्र के साथ वापस आ गई कि हम आपकी कहानी अभी तक छाप नहीं पाए हैं, हाँ प्रतीक्षा का और हौंसला हो तो वापस भेज दें। यानी पूरे दस वर्ष प्रतीक्षा कराने के बाद और प्रतीक्षा ..... यह कैसा मजाक है। साहित्य के भीतर भी एक सत्ता है जो अंकुरित होते पौधे को कुचल देती है।''[22] इस प्रकार पता चलता है कि दलित वर्ग को हमेशा से ही शोषण का शिकार होना पड़ा है, चाहे वह जीवन का कोई भी क्षेत्र क्यों न हो।

आधुनिक लोकतान्त्रिक ढ़ाचा भी काफी हद तक दलितों के शोषण में लिप्त रहता है। प्रशासन भी दलितों को हमेशा दबाने और कुचलने का प्रयास करता रहा है। बरला गांव में जब श्रमिकों द्वारा अपने श्रम का मूल्य मांगा जाता है तो पुलिस लोगों पर बर्बरतापूर्ण व्यवहार करती है। वाल्मीकि के शब्दों में, ''लोकतन्त्र की दुहाई देने वाले सरकारी मशीनरी का उपयोग नसों में दौड़ते हुए लहू को ठंडा करने के लिए करते हैं, जैसे हम इस देश के नागरिक ही नहीं हैं। हजारों साल से इसी तरह दबाया गया कमजोर बेबसों को कितनी प्रतिभाएं छल और कपट का शिकार होकर मिट गई। कोई हिसाब नहीं।''[23] इससे स्पष्ट पता चलता है कि प्रशासन भी सदा दलितों की आवाज़ को दबाने की कोशिश करता रहा है।

गुजरात में आरक्षण विरोधियों द्वारा दलितों पर अनेक जुल्म किये गये। प्रशासन मौन रह कर तमाशा देखता रहा। उल्टे दलित समुदाय के लोगों को दंडित और प्रताड़ित किया गया। वाल्मीकि के शब्दों में, ''ग्रामीण क्षेत्रों में आरक्षण विरोधियों ने बेइंतहा जुल्म ढ़ाए थे। चारों ओर हिंसा का ताडंव था। ..... सरकारीए अर्द्ध सरकारी कार्यालयों में दलित अधिकारियों, कर्मचारियों को प्रताड़ित किए जाने की घटनाएं बढ़ने लगी। ..... शोषित संघ के पर्चे पर प्रशासन निष्क्रिय था। लेकिन दलितों का पर्चा वितरित होते ही प्रशासन सक्रिय हो गया था। दलित, प्रतिनिधियों को बुलाकर पूछताछ होने लगी थी।''[24] इस प्रकार दलित वर्ग हमेशा से ही शासन–प्रशासन की गलत नीतियों और नियमों का शिकार होता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जीवन में सदा सघर्ष किया। वाल्मीकि और उसका समाज हमेशा शोषण और अनदेखी का शिकार हुआ परन्तु बावजूद इसके वाल्मीकि ने हार नहीं मानी। उन्होंने अम्बेदकर को पढ़ा और उनके विचारों का प्रचार–प्रसार किया। अम्बेडकर के कारण ही वाल्मीकि की चेतना जागृत होती है। तब वाल्मीकि की समझ में आता है कि, ''हमें एक लगातार संघर्ष और बदलाव तथा हमारे दिलों में बैचेनी पैदा करने वाली संघर्ष चेतना की जरूरत है, जो क्रान्तिकारी बदलाव लाए और सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया का नेतृत्व करे।''[24] अतः वाल्मीकि का मानना है कि यदि हमें शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति चाहिए तो हमें अपने अधिकारों के प्रति सचेत होना पड़ेगा और अधिक से अधिक शिक्षित होना पड़ेगा, तभी कहीं जातिगत विषमता से मुक्ति मिल सकेगी अन्यथा नहीं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'जूठन' आत्मकथा ओमप्रकाश वाल्मीकि तथा उसके जैसे दलित लोगों के जीवन यथार्थ का दस्तावेज है। दलित का सदा दलन ही होता रहा है। लेखक 'जूठन' के माध्यम से स्पष्ट करना चाहता है कि व्यक्ति की पहचान एक मनुष्य के रूप में होनी चाहिए न कि जातिगत रूप में। 'जूठन' आत्मकथा व्यक्ति को जीवन में संघर्ष, संगठित और शिक्षित होने का संदेश देती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० ललिता कौशल, हिन्दी की चर्चित दलित आत्मकथाएं, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, 2010, पृ० 54
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ० 11–12
3. वही, पृ० 13
4. वही, पृ० 65–66
5. वही, पृ० 21
6. वही, पृ० 72
7. वही, पृ० 119–120
8. वही, पृ० 138–139
9. वही, पृ० 159
10. वही, पृ० 13
11. वही, पृ० 14
12. वही, पृ० 14–15
13. वही, पृ० 81
14. वही, पृ० 85
15. वही, पृ० 20
16. वही, पृ० 19
17. वही, पृ० 21
18. वही, पृ० 47
19. वही, पृ० 93–94
20. वही, पृ० 26
21. वही, पृ० 156
22. वही, पृ० 147
23. वही, पृ० 52
24. वही, पृ० 130–131